एसो णवसु पदेसु कत्थ वट्टदे ? सेसपदसंभवाभावादो सत्थाण-० पदे। ण उप्पण्णपदेसो घरं गामो देसो वा सत्थाणं, तस्स वि उवयारदंसणादो। ण च ममेदंबुद्धीए पडिगहिदपदेसो सत्थाणं, अजोगिम्हि खीणमोहम्हि ममेदंबुद्धीए अभावादो त्ति ? ण एस दोसो, वीदरागाणं अप्पणो अच्छिदपदेसस्सेव सत्थाणववएसादो। ण सरागाणमेस णाओ, तत्थ ममेदंभावसंभवादो। अथवा एस चेव णाओ सव्वत्थ घेप्पउ, विरोहाभावादो। जदि एवं सत्थाणस्स अत्थो वुच्चदि, तो सासणसत्थाणफोसणस्स अट्ठ चोद्दसभागा पावंति त्ति चे ण, फोसणे ममेदंबुद्धिपडिगहिदस्स सस्सामिसंबंधेण वारिदस्स चेव सत्थाणववदेसादो। सेसं सुगमं।

एवं णाणमग्गणा समत्ता।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ५८ ॥

शंका— अपना जन्मस्थान घर, ग्राम, देश, स्वस्थान है सो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, यह स्वस्थानपद भी अयोगिकेवलीमें केवल उपचारसे ही देखा जाता है। 'यह मेरा है' इस प्रकारकी बुद्धिसे ग्रहण किया गया प्रदेश स्वस्थान है, यह भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, क्षीणमोही अयोगी भगवानमें 'मम इदं' बुद्धि का अभाव है। इसलिये अयोगकेवलीके स्वस्थानपद नहीं बन सकता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, वीतरागियोंके अपने रहनेके प्रदेशको ही स्वस्थान नामसे कहा गया है। किन्तु सरागियोंके लिए यह न्याय नहीं है, क्योंकि, उनमें ममेदंभाव संभव है। अथवा, 'अपने रहनेके प्रदेशको स्वस्थान कहते हैं' यही न्याय सर्वत्र ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उसके माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका— यदि स्वस्थानका ऐसा अर्थ कहते हैं, तो सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके स्वस्थानस्वस्थानपदके स्पर्शनका क्षेत्र आठ बटे चौदह $\frac{८}{१४}$ राजु प्रमाण प्राप्त होता है, (जो कि आगे स्पर्शनानुयोगद्वारमें बताया नहीं गया है) ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, स्पर्शनानुयोगद्वारमें, ममेदंबुद्धिसे प्रतिगृहीत और अपने स्वामित्वके सम्बन्धसे रोके हुए क्षेत्रको ही स्वस्थान संज्ञा प्राप्त है।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संयत जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं॥ ५८॥

---

१ संयमानुवादेन × × × संयतानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

एत्थ किमट्ठं दव्वट्ठियणयदेसणा कीरदे ? ण, संजमसामण्णे पहाणीकदे ओघं पडि विसेसाभावादो । पज्जवट्ठियणयपरूवणा एत्थ जाणिय वत्तव्वा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ५९ ॥

एगजोगो किण्ण कदो ? ण, खेत्तं पडि सेसगुणट्ठाणेहिंतो सजोगिस्स विसेसोवलंभादो । जदि एवं, तो सेसगुणट्ठाणाणं पि णाणाविहभेयभिण्णाणं पुष पुष सुत्तकरणं पावेदि त्ति चे ण, तेसिं पहाणीकयखेत्तजणिदविसेसाभावादो । एत्थ सेसा पज्जवट्ठियणयपरूवणा सव्वा वत्तव्वा ।

सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं[1] ॥ ६० ॥

शंका– इस सूत्रमें द्रव्यार्थिकनयकी देशना किस लिए की जा रही है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, संयमसामान्यके प्रधान करनेपर ओघक्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा संयममार्गणाके अनुवादसे क्षेत्रप्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है ।

यहांपर पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा जान करके कहनी चाहिए ।

सयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें, लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ५९ ॥

शंका– इन दोनों सूत्रोंका एक समास क्यों नहीं किया ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, क्षेत्रकी अपेक्षा शेष गुणस्थानोंसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें विशेषता पाई जाती है ।

शंका– यदि ऐसा है, तो नाना प्रकारके भेदोंसे भिन्नताको प्राप्त शेष गुणस्थानोंके भी पृथक् पृथक् सूत्रोंकी रचना प्राप्त होती है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, उनमें क्षेत्रजनित विशेषताकी प्रधानता नहीं की गई है ।

यहांपर सभी गुणस्थानसम्बन्धी शेष सर्व पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा कहनी चाहिए ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सामायिक और छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयत ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

---

१ × सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतानां चतुर्णां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

ओघपमत्तादिरासीदो सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदपमत्तादओ समाणा त्ति एदेसिं परूवणा ओघं भवदि । ण च सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेहितो पुधभूदा परिहारसुद्धिसंजदा अत्थि, जेण तदो भेदो होज्ज । किमिदि पुधभूदा णत्थि ? दुणयवदिरित्तछदुमत्थजीवाभावादो[1] । सेसं सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ ६१ ॥

एदस्स वि सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो त्ति संपहि ण वुच्चदे । णवरि पमत्तसंजदे तेजाहारं णत्थि ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा खवगा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[3] ॥ ६२ ॥

ओघमें कही गई प्रमत्तसंयतादिराशिसे सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमवाले प्रमत्तसंयतादिक समान हैं, इसलिए इनके क्षेत्रकी प्ररूपणा ओघोक्त क्षेत्रके समान बन जाती है और सामायिक तथा छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंसे परिहारविशुद्धिसंयत पृथक् नहीं है, जिससे कि उनसे इनमें भेद हो जाय ।

शंका— परिहारविशुद्धिसंयत, सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंसे पृथग्भूत क्यों नहीं है ?

समाधान— क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंसे भिन्न छद्मस्थ जीवोंका अभाव है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६१ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए अब नहीं कहते हैं । विशेष बात यह है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती परिहारविशुद्धिसंयतके तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशामक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६२ ॥

---

१ प्रतिषु 'दुणय' इति पाठः ।

२ × × × परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

३ × × × सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु त्ति आधारणिद्देसो। तत्थ सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा दुविधा होंति उवसामगा खवगा चेदि। ते अप्पणो पदेसु वट्टमाणा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे होंति। णवरि मारणंतियपदे माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे होंति।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं[1] ॥ ६३ ॥

एत्थ ट्ठाणसद्दो पुव्वुत्तणाएण गुणट्ठाणवाची। चदुण्हं ठाणाणं समाहारो चदुट्ठाणी, सा ओघं होदि। उवसंतकसाय-खीणकसाय-सजोगि-अजोगिजिणाणं जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं अप्पणो ओघपरूवणं होदि त्ति जं वुत्तं होदि।

संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ ६४ ॥

एदस्स अत्थो पुव्वं परूविदो।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठी ओघं[3] ॥ ६५ ॥

'सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें' इस पदसे आधारका निर्देश किया गया। इस गुणस्थानमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत दो प्रकारके होते हैं, उपशामक और क्षपक। वे दोनों ही प्रकारके सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत अपने यथासंभव पदोंमें रहते हुए सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्घातपदमें उपशामक जीव मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें उपशान्तकषाय गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक चारों गुणस्थानवाले संयतोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

इस सूत्रमें आया हुआ 'स्थान' शब्द पूर्वोक्त न्यायसे गुणस्थानका वाचक है। चार गुणस्थानोंके समुदायको 'चतुःस्थानी' कहते हैं। उनका क्षेत्र ओघके समान है। अर्थात्, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगिजिन और अयोगिजिन गुणस्थानवर्ती यथाख्यातविहारविशुद्धिसंयतोंका क्षेत्र अपने ओघक्षेत्रके समान होता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

संयतासंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है।

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६५ ॥

---

१ × × × यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां चतुर्णां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ × × × संयतासंयतानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

३ × × असंयतानां च चतुर्णां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

ओघपरूवणा गुणट्ठाणाणमभेदेण भेदेण च जा कदा, सा अत्थोघ-आदेसोघेहि दुविधा होदि। आदेसोघो वि गुणट्ठाणभेदेण चोद्दसविहो होदि। एत्थ ओघमिदि वुत्ते कदमस्स ओघस्स गहणं? आदेसोघस्स अवयवभूदमिच्छादिट्ठीणमोघस्स। कधमेदं लब्भदे? पच्चासत्तीदो। अण्णेहि वि ओघेहि सह कथंचि पच्चासत्ती अत्थि त्ति भणिदे ण, अण्णेहि सह मिच्छादिट्ठीहि जेम पयरिसेण पच्चासत्तीए अभावादो। एवमत्थपदं सव्वत्थ जोजेयव्वं। असंजदचदुगुणट्ठाणाणमेगजोगो किण्ण कदो? ण, मिच्छादिट्ठीणं सेसगुणट्ठाणेहि सह खेत्तेण पयरिसपच्चासत्तीए अभावादो।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ६६ ॥

एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण च पच्चासत्ती अत्थि त्ति एगजोगो कदो।

एवं संजममग्गणा समत्ता।

शंका— ओघप्ररूपणा गुणस्थानोंके अभेदसे और भेदसे जो की गई है, वह अर्थ- ओघ और आदेश-ओघके भेदसे दो प्रकारकी होती है। आदेश-ओघ भी गुणस्थानोंके भेदसे चौदह प्रकारका होता है। सो यहां 'ओघ' ऐसा सामान्यपद कहनेपर किस ओघका ग्रहण किया गया है?

समाधान— आदेश-ओघके अवयवभूत मिथ्यादृष्टियोंके ओघका ग्रहण किया गया है।

शंका— यह अर्थ कैसे प्राप्त होता है?

समाधान— प्रत्यासत्तिसे, अर्थात् सामीप्यसे, आदेश-ओघका ग्रहण किया गया है, यह जाना जाता है।

शंका— प्रत्यासत्ति तो कथंचित् अन्य भी ओघोंके साथ हो सकती है?

समाधान— ऐसी शंकापर उत्तर देते हैं कि नहीं, क्योंकि, अन्य ओघोंके साथ मिथ्यादृष्टियोंके समान प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है।

यह अर्थपद सर्वत्र लगाना चाहिए।

शंका— असंयत चारों गुणस्थानोंका एक योग (समास) क्यों नहीं किया?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका शेष सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतम प्रत्यासत्तिका अभाव है।

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६६ ॥

इन सूत्रोक्त तीनों ही गुणस्थानोंका सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागके साथ और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रके साथ प्रत्यासत्ति पाई जाती है, इसलिये उक्त तीनों गुणस्थानोंका एक योग इस सूत्रमें किया गया है।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-भागे[1] ॥ ६७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा चक्खु-दंसणी मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एत्थ ओवट्टणा जाणिय कादव्वा। एवं मारणंतिय-समुग्घादगदा। णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं। एवं चेव उववादगदाणं पि वत्तव्वं। अपज्जत्तकाले चक्खुदंसणाभावादो उववादो णत्थि त्ति णासंकणिज्जं, अपज्जत्तकाले वि खओवसमं पडुच्च चक्खुदंसणुवलंभादो। जदि एवं, तो लद्धिअपज्जत्ताणं पि चक्खुदंसणित्तं पसज्जदे। तं च णत्थि, चक्खुदंसणिअवहारकालस्स पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपमाणप्पसंगादो ? ण एस दोसो, णिव्वत्ति-अपज्जत्ताणं चक्खुदंसणमत्थि; उत्तरकाले णिच्छएण चक्खुदंसणोवजोगसमुप्पत्तीए

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिक-समुद्धातगत चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तिर्यग्लोकसे संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर अपवर्तना जानकर करना चाहिए। इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्धातगत मिथ्यादृष्टि चक्षुदर्शनियोंका क्षेत्र है। विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्धातगत चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए। इसी प्रकारसे उपपादगत मिथ्यादृष्टि चक्षुदर्शनियोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए। अपर्याप्तकालमें चक्षुदर्शनका अभाव होनेसे यहांपर उपपादपद नहीं है, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें भी क्षयोपशमकी अपेक्षा चक्षुदर्शन पाया जाता है।

शंका— यदि ऐसा है, तो लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनीपनेका प्रसंग प्राप्त होता है। किन्तु लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता नहीं है। यदि लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनका सद्भाव माना जायगा, तो चक्षुदर्शनी जीवोंके अवहारकाल प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होगा?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता है, इसका कारण यह है कि उत्तरकालमें, अर्थात् अपर्याप्तकाल समाप्त होनेके पश्चात् निश्चयसे

---

१ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनिनां मिथ्यादृष्टयादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

अविणाभाविचक्खुदंसणखओवसमदंसणादो । चउरिंदिय-पंचिंदियलद्धिअपज्जत्ताणं चक्खुदंसणं णत्थि, तत्थ चक्खुदंसणोवओगसमुप्पत्तीए अविणाभाविचक्खुदंसणक्खओवसमाभावादो। सेसगुणट्ठाणाणं पज्जवट्ठियपरूवणा जाणिय वत्तव्वा ।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ६८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ ६९ ॥

एदेसिमणंतरदोसुत्ताणमेगत्तं किण्ण कदं? ण, मिच्छादिट्ठीहि सेसगुणट्ठाणाणं पच्चासत्तीए अभावादो ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो[2] ॥ ७० ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो[3] ॥ ७१ ॥

चक्षुदर्शनोपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनका क्षयोपशम देखा जाता है। हां, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन नहीं होता है, क्योंकि, उनमें चक्षुदर्शनोपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनावरणकर्मके क्षयोपशमका अभाव है।

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानोंकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा जान करके कहनी चाहिए।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६९ ॥

शंका— इन अनन्तरोक्त दोनों सूत्रोंका एकसूत्र क्यों नहीं बनाया?

समाधान— नहीं, क्योंकि, क्षेत्रकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि अचक्षुदर्शनी जीवोंके साथ शेष गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्रत्यासत्तिका अभाव है।

अवधिदर्शनी जीवोंका क्षेत्र अवधिज्ञानियोंके क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७० ॥

केवलदर्शनी जीवोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां भाग, लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ७१ ॥

---

१ अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.　३ केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति पज्जवट्ठियपरूवणा ण कीरदे ।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ७२ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपदेहि सव्वलोगच्छणेण, विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छणेण च सरिसत्तमत्थि त्ति ओघमिदि भणिदं । णवरि वेउव्वियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ७३ ॥

चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण च सरिसत्तुवलंभादो सिद्धमोघत्तं । विसेसदो पुण मारणंतिय-उववादगदा किण्ह-णील-

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिये पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंके साथ सर्वलोकमें रहनेकी अपेक्षा, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदके साथ सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके क्षेत्रकी ओघके साथ सदृशता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा । विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घातगत तीनों अशुभलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७३ ॥

तीनों अशुभलेश्यावाले उक्त तीनों गुणस्थानवर्ती जीवोंके स्वसंभव पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहनेसे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेसे ओघके साथ सदृशता पाई जाती है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना सिद्ध हुआ ।

१ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यानां मिथ्यादृष्टयाद्यसंयतसम्यग्दृष्टयन्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

काउलेस्सियअसंजदसम्मादिट्ठिणो संखेज्जा वि होदूण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे खेत्तेअच्छंति, असंखेज्जजोयणायामत्तादो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्त-संजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ७४ ॥

तेउलेस्सियमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । मारणंतियसमुग्घादगदा एवं चेव । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । एवं चेव उववादगदाणं । एत्थ ओवट्टणं ठविज्जमाणे सुधम्मरासिं ठविय अप्पणो उवक्कमणकालेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण भागे हिदे एगसमएण तत्थुववज्जमाणजीवा होंति । पुणो अवरमेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारसरूवेण ट्ठविदे रज्जुआयामेण उववादगदरासी होदि । पुणो संखेज्जपदरंगुलमेत्तरज्जूहि गुणिदे उववादखेत्तं होदि । ओवट्टणा जाणिय कायव्वा । तेउलेस्सियगुणपडिवण्णाणं ओघभंगो । पम्मलेस्सियमिच्छादिट्ठी

किन्तु विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यात हो करके भी मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उनके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत दंडका आयाम असंख्यात योजन पाया जाता है ।

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार है । विशेष बात यह कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार उपपाद पदगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिए । यहांपर अपवर्तनाके स्थापित करते समय सौधर्मकल्पकी जीवराशिको स्थापित कर उसमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अपने उपक्रमणकालसे भाग देनेपर एक समयमें उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव होते हैं । पुनः एक दूसरा पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहारस्वरूपसे स्थापित कर एक राजुप्रमाण

१ तेजःपद्मलेश्यानां मिथ्यादृष्टयाद्यप्रमत्तान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाण - विहारवदिसत्थाण - वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पहाणीभूदतिरिक्खरासित्तादो। वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पधाणीकदसणक्कुमार-माहिंदरासीदो। सासणादिगुणपडिवण्णाणं अप्पमत्तसंजदंताणं ओघभंगो।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ७५ ॥

सुक्कलेस्सियमिच्छाइट्ठिणो जेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता, तेण सत्थाणसत्थाण - विहारवदिसत्थाण - वेदण-कसाय-वेउव्विय - मारणंतिय-उववादपदेहि

आयामवाली उपपादपदको प्राप्त जीवराशिका प्रमाण होता है। पुनः उसे संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण राजुओंसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है। यहांपर अपवर्तना जान करके करना चाहिए। गुणस्थानप्रतिपन्न तेजोलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर तिर्यंचराशिकी प्रधानता है। वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदको प्राप्त पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर सानत्कुमार-माहेन्द्र देवराशिकी प्रधानता है। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पद्मलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है।

शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७५ ॥

चूंकि, शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिये वे स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। विशेष बात यह है कि

---

१ शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। सेसगुणट्ठाणाणमोघभंगो। णवरि मिच्छादिट्ठिप्पहुडि सव्वगुणट्ठाणेसु मारणंतिय-उववादपदेसु जीवा संखेज्जा चेव।

सजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ७६ ॥

एदं सुत्तं सुगमं। जधा कसायमग्गणाए अकसाइया वुत्ता, तधा एत्थ लेस्सामग्गणाए अलेस्सिया किण्ण वुत्ता त्ति भणिदे वुच्चदे– जत्थ दव्वं पहाणीभूदं, तत्थ भणिदं होदि। जत्थ पुण पज्जवो पहाणो, तत्थ ण होदि। लेस्सामग्गणा पुण पज्जयपहाणा एत्थ कदा, तेण अलेस्सिया ण परूविदा।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[2] ॥ ७७ ॥

एदं सुत्तं सव्वं पि मूलोघादो अविसिट्ठमिदि मूलोघपज्जवट्ठियपरूवणं लभदे।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक सभी गुणस्थानोंमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दोनों पदोंमें शुक्ललेश्यावाले जीव संख्यात ही होते हैं।

शुक्ललेश्यावाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

शंका– जिस प्रकार कषायमार्गणामें क्षेत्रप्ररूपणा करते समय अकषायी जीव कहे गये हैं उसी प्रकार यहां लेश्यामार्गणामें अलेश्य जीवोंका कथन क्यों नहीं किया गया है?

समाधान– ऐसी आशंका करनेपर कहते हैं, जिस मार्गणामें द्रव्य प्रधान है उस मार्गणामें तो वैसा कहा गया है, किन्तु जिस मार्गणामें पर्याय प्रधान है उस मार्गणामें वैसा नहीं कहा गया है परन्तु लेश्यामार्गणा यहां पर्यायप्रधान कही गई है, इसलिए इस मार्गणामें अलेश्य जीव नहीं कहे गये हैं।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ७७ ॥

यह सम्पूर्ण ही सूत्र मूल-ओघ प्ररूपणाके समान है, इसलिए मूल-ओघ-पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाको प्राप्त होता है, अर्थात्, भव्यजीवोंका क्षेत्र ओघमें कहे गये क्षेत्रके समान ही है।

---

१ सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ भव्यानुवादेन भव्यानां चतुर्दशानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

अभवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोए[1] ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा अभवसिद्धिया सव्वलोगे। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदट्ठिदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो? तसरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो णज्जदे। तं जधा– सव्वत्थोवा धुवबंधगा। सादियबंधगा असंखेज्जगुणा। अणादियबंधगा असंखेज्जगुणा। अध्दुवबंधगा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण? धुवबंधगेणूणसादियबंधगमेत्तेण। तसेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता चेव अभवसिद्धिया होंति त्ति एदं कुदो णव्वदे? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसादियबंधगेहिंतो असंखेज्जगुणहीणत्तण्णहाणुववत्तीदो। सादियबंधगा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति कुदो णव्वदे?

अभव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदको प्राप्त अभव्यसिद्धिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक पदस्थित अभव्यसिद्धिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका– यह कैसे जाना कि विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत अभव्यजीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं?

समाधान– त्रसराशिका आश्रय करके कहे गये बंधसम्बन्धी अल्पबहुत्वानुयोगद्वारके सूत्रोंसे यह जाना जाता है। वह इस प्रकार है– 'ध्रुवबंधक जीव सबसे कम हैं। उनसे सादिबंधक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अनादिबंधक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अध्रुवबंधक जीव विशेष अधिक हैं। कितने मात्र विशेषसे अधिक हैं? ध्रुवबंधकोंसे हीन सादिबंधकोंकी राशिके प्रमाणसे अधिक हैं।

शंका– त्रसजीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही अभव्यसिद्धिक जीव होते हैं, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान– पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिबंधकोंसे ध्रुवबंधकोंकी असंख्यातगुणहीनता अन्यथा बन नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि त्रसराशिमें अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं।

शंका– सादिबंध करनेवाले जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान– युक्तिसे।

---

१ अभव्यानां सर्वलोकः। स. सि. १, ८.

जुत्तीदो । का जुत्ती ? वुच्चदे– तसेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सादिय-बंधगा, वासपुधत्तंतरेण तसट्ठिदीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालुव-लंभादो । एइंदिएसु संचिदअणंतसादियबंधगेहितो पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सादियबंधगा तसेसु किण्ण उप्पज्जंती ? ण, सव्वगुण-मग्गणट्ठाणेसु आयाणुसारि-वओवलंभादो । जेण एइंदिएसु आओ संखेज्जो, तेण तेसिं वएण वि तत्तिएण चेव होदव्वं । तदो सिद्धं सादियबंधगा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ७९ ॥

दव्वट्ठियपरूवणं पडि विसेसो णत्थि त्ति ओघमिदि वुत्तं । पज्जवट्ठिय-परूवणाए वि णत्थि कोई विसेसो । णवरि खईयसम्मादिट्ठीसु संजदासंजदाणं

शंका– वह युक्ति कौनसी है ?

समाधान– कहते हैं– त्रसजीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिबंधक जीव होते हैं, क्योंकि, वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे त्रसकायकी स्थितिका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल पाया जाता है ।

शंका– एकेन्द्रिय जीवोंमें संचयको प्राप्त अनन्त सादिकबंधकोंमेंसे जगत्प्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण सादिबंधक जीव त्रसजीवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, सभी गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें आयके अनुसार ही व्यय पाया जाता है । चूंकि, एकेन्द्रियोंमें आयका प्रमाण संख्यात ही है, इसलिए उनका व्यय भी उतना अर्थात् संख्यात ही होना चाहिए । इसलिए सिद्ध हुआ कि त्रसराशिमें सादिबंधक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ।। ७९ ।।

द्रव्यार्थिकनयके प्ररूपणकी अपेक्षा सूत्र-प्रतिपादित जीवोंके क्षेत्रमें ओघ क्षेत्रसे कोई विशेषता नहीं है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है । पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणामें भी कोई विशेषता नहीं है । केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयत गुणस्थानवर्ती जीवोंके

---

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्टयाद्ययोगकेवल्यन्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

मणुसपज्जत्तसंजदासंजदपरूवणाए कादव्वा । असंजदसम्मादिट्ठी वि मारणंतिय-उववादपदेसु वट्टमाणा संखेज्जा । सेसं सुगमं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

पुव्विल्लेहि सह खेत्तं पडि पयरिसेण पच्चासत्तीए अभावादो पुध सुत्तारंभो । सेसं सुगमं ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्त-संजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ८१ ॥

एत्थ ओघपज्जवट्ठियपरूवणा णिरवयवा सव्वगुणट्ठाणेसु परूवेदव्वा, विसेसाभावादो ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंत-कसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥८२॥

मनुष्यपर्याप्त संयतासंयत तक ही होते हैं, अतः उनमें संभव पदोंकी अपेक्षा ही क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिए । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

सयोगिकेवली भगवान्का क्षेत्र ओघकथित क्षेत्रके समान है ॥ ८० ॥

सयोगिकेवली गुणस्थानकी पूर्ववर्ती गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है, इसलिए यह पृथक् सूत्र बनाया गया है । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८१ ॥

यहांपर ओघमें कही गई पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा सम्पूर्ण पदोंकी अपेक्षा सर्व गुणस्थानोंमें प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्त-कषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८२ ॥

---

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १,८.

२ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकषायान्तानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १,८

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा असंजद-सम्मादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। मारणंतिय-उववादपदेसु एसो चेव आलावो। णवरि तेसु पदेसु[1] ट्ठिदजीवा संखेज्जा चेव होंति, उवसमसेढीदो ओदरिय उवसमसम्मत्तेण सह असंजमं पडिवण्णजीवाणं संखेज्जत्तुवलंभादो। सेसउवसमसम्मादिट्ठीणं किण्ण मरणमत्थि त्ति वुत्ते सभावादो]। एवं संजदासंजदाणं पि[2]। णवरि उववादपदं णत्थि। सेसाणमोघं। णवरि पमत्तसंजदस्स उवसमसम्मत्तेण तेजाहारं णत्थि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[3] ॥ ८३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८४ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद इन दोनों पदोंमें भी यही उक्त क्षेत्र-आलाप जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उन दोनों पदोंमें वर्तमान जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतर कर उपशमसम्यक्त्वके साथ असंयमभावको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी संख्या संख्यात ही पाई जाती है।

शंका– उपशमश्रेणीसे उतर कर मरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त शेष अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण क्यों नहीं होता है?

समाधान– स्वभावसे ही नहीं होता है।

इसी प्रकारसे संयतासंयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है। शेष गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघ-वर्णित क्षेत्रके समान है। विशेषता केवल इतनी है कि प्रमत्तसंयतके उपशमसम्यक्त्वके साथ तैजससमुद्धात और आहारकसमुद्धात नहीं होते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८४ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८५ ॥

---

१ प्रतिषु 'पदेसेसु' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'हि' इति पाठः।

३ ××× सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति एदेसिं परूवणा ण कीरदे ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥८६॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादसदा सण्णिमिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एवं मारणंतिय-उववादपदेसु वि वत्तव्वं । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे इदि भणिदव्वं । सेसगुणट्ठाणाणमोघभंगो, तदो विसेसाभावादो ।

असण्णी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे[2] ॥ ८७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

ये उक्त तीनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिए उनकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पांच पदोंको प्राप्त संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए । केवल इतनी बात विशेष कहनी चाहिए कि ये तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघ-क्षेत्रके समान है, क्योंकि, ओघके क्षेत्रसे सासादनादि गुणस्थानोंके संज्ञी जीवोंके क्षेत्रमें कोई विशेषता नहीं है ।

असंज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ८७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् । स. सि. १, ८.

२ असंज्ञिनां सर्वलोकः । स. सि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

सव्वपदेहि ओघपरूवणादो विसेसो णत्थि त्ति ओघत्तं जुज्जदे ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ८९ ॥

एदस्स सुत्तस्स पज्जवट्ठियपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला । णवरि उववादो सरीरगहिदपढमसमए वत्तव्वो । सजोगिकेवलिस्स वि पदर-लोगपूरणसमुग्घादा वि णत्थि, तत्थ आहारित्ताभावादो ।

अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

दव्वट्ठियपरूवणाए ओघं होदि । पज्जवट्ठियपरूवणाए पुण उववादपदमेक्कं चेव अत्थि । सेसं णत्थि । सेसं सुगमं ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ८८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंमें स्वस्थान आदि सभी पदोंके साथ क्षेत्रसम्बन्धी ओघप्ररूपणासे विशेषता नहीं है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना बन जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८९ ॥

इस सूत्रकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके समान है । विशेष बात यह है कि आहारक जीवोंके उपपादपद शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें कहना चाहिए, (क्योंकि, तभी जीव आहारक होता है) । आहारक सयोगिकेवलीके भी प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात नहीं होते हैं, क्योंकि, इन दोनों अवस्थाओंमें केवलीके आहारकपनेका अभाव है, अर्थात् प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातकी अवस्थामें सयोगिकेवली भगवान् अनाहारक रहते हैं ।

अनाहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ९० ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणासे अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान होता है । किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाकी अपेक्षा तो एक उपपादपद ही होता है । शेष पद नहीं होते हैं, (क्योंकि, अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंमें स्वस्थानादि शेष सभी पद असंभव हैं) । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

---

१ आहारानुवादेन आहारकाणां मिथ्यादृष्टयादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अजोगकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ९१ ॥

पज्जवट्ठियणएण उववादगदा सासणसम्मादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाईज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। असंजदसम्मादिट्ठीणं परूवणा एवं चेव। अजोगिकेवली चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा[2] ॥ ९२ ॥

पदरगदो सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु होदि, लोगपेरंतट्ठिदवादवलयवदिरित्तसयललोगखेत्तं समावूरिय ट्ठिदत्तादो। लोगपूरणे पुण सव्वलोगे भवदि, सव्वलोगमावूरिय ट्ठिदत्तादो।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता)

एवं खेत्ताणिओगद्दारं समत्तं[3]।

अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९१ ॥

पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा उपपादको प्राप्त अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा भी इसी प्रकार जाननी चाहिए। अनाहारक अयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं।

अनाहारक सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ९२ ॥

प्रतरसमुद्घातगत सयोगिकेवली जिन लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं, क्योंकि, वे लोकके चारों ओर स्थित वातवलयके क्षेत्रको छोड़कर शेष समान लोकके क्षेत्रको समापूरित करके स्थित होते हैं। पुनः लोकपूरणसमुद्घातमें वे ही सयोगकेवली जिन सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, उस समय वे सर्व लोकको आपूरण करके स्थित होते हैं।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई।)

इस प्रकार क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

---

१ अनाहारकाणां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्ययोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ सयोगिकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागाः सर्वलोको वा। स. सि. १, ८.

३ क्षेत्रनिर्णयः कृतः। स. सि. १, ८.